संपादकीय जागरण

गुरुवार, 21 सितंबर, 2017 : आश्विन शुक्ल प्रतिपदा वि. 2074

संवाद से तमाम समस्याओं का हल संभव है

अर्थव्यवस्था की दिशा

वित्तमंत्री अरुण जेटली की ओर से अर्थव्यवस्था में जान फूंकने के लिए जल्द ही अतिरिक्त उपाय करने की घोषणा यही बताती है कि आर्थिक-व्यापारिक गतिविधियों को बल देने की जरूरत सचमुच है। बेहतर होगा कि इस काम में और देर न की जाए, क्योंकि यह धारणा दूर करने की सख्त जरूरत है कि देश आर्थिक सुस्ती के दौर में है। जल्द जरूरी कदम उठाने इसलिए और भी आवश्यक हो गए हैं, क्योंकि कुछ विपक्षी दल अर्थव्यवस्था की सेहत को लेकर एक नकारात्मक माहौल बनाने की कोशिश करते दिख रहे हैं। इसके लिए वे जीडीपी के आंकड़ों में गिरावट, पेट्रोलियम उत्पादों में वृद्धि के साथ जीएसटी के अमल में आ रही बाधाओं के साथ अन्य मसलों का जिक्र कर रहे हैं। कुछ तो ऐसे भी हैं जो मंदी की आहट सुनने का दावा कर रहे हैं। अर्थव्यवस्था के मामले में मिथ्या धारणाएं गहराने के पहले ही सरकार को सक्रियता दिखानी चाहिए, क्योंकि कई बार ऐसी धारणाएं वास्तविकता के विपरीत होते हुए भी कारोबारी माहौल पर बुरा असर डालती हैं। फिलहाल यह स्पष्ट नहीं कि सरकार अतिरिक्त उपायों के तहत क्या कदम उठाएगी, लेकिन माना यही जा रहा है कि वह कुछ ऐसे जतन करेगी जिससे उद्योग-व्यापार जगत के साथ आम लोगों का भी भरोसा बढ़े। इस भरोसे को बढ़ाने की जरूरत इसलिए भी है, क्योंकि एक तो नोटबंदी का थोड़ा-बहुत असर अभी भी नजर आता है और दूसरे जीएसटी व्यवस्था सुगम होने का नाम नहीं ले रही है। निःसंदेह कर प्रणाली में आमूल-चूल बदलाव के क्रम में कुछ समस्याएं आनी ही थीं, लेकिन यह ठीक नहीं कि जीएसटी के सूचना तकनीक नेटवर्क की खामियां दूर नहीं हो पा रही हैं। सरकार को यह बात पहले से पता होनी चाहिए थी कि अधिकतर करदाता रिटर्न दाखिल करने के लिए आखिरी तिथि का इंतजार करते हैं। चूंकि जीएसटी नेटवर्क में खामी के साथ अन्य समस्याएं भी सामने आ रही हैं इसलिए शिकायतों का अंबार लगने के साथ असंतोष का भाव गहरा रहा है।

अब जब सरकार अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए कुछ अतिरिक्त कदम उठाने जा रही है तब फिर उसे यह भी देखना होगा कि क्या कारण है कि शेयर बाजार तो आगे बढ़ रहा है, लेकिन उसकी तुलना में आर्थिक-व्यापारिक गतिविधियां तेज होती नहीं दिख रही हैं? इन गतिविधियों में वृद्धि के लिए विदेशी निवेशकों के साथ देसी निवेशकों की सक्रियता भी समय की मांग है। यह ठीक नहीं कि देसी निवेशक पूंजी होने के बाद भी नए उद्यम लगाते अथवा पुराने उद्यमों का विस्तार करने के लिए उत्साहित नहीं दिख रहे हैं। इस पहेली का हल खोजा ही जाना चाहिए कि विदेश में कारोबार की संभावनाएं तलाशने वाले भारतीय उद्यमी देश में ऐसा क्यों नहीं कर रहे हैं? इसी तरह उन कारणों का भी निवारण होना चाहिए जिनके चलते बाजार में मांग नहीं बढ़ रही है। इसी तरह जरूरी केवल यह नहीं है कि निजी क्षेत्र में बड़े उद्यम लगें और खुद सरकार अपने स्तर पर बड़ी परियोजनाओं को गति दे। जरूरी यह भी है कि लघु एवं मध्यम श्रेणी के उद्योगों का संजाल बिछे। दरअसल ऐसा होने पर ही रोजगार के उस सवाल का सामना करने में आसानी होगी जो सरकार की परेशानी का कारण बन रहा है।

अब खैर नहीं

अब नकली शराब बनाने और तस्करी करने वालों को सावधान हो जाना चाहिए। विषाक्त शराब से होने वाली मौतों के मद्देनजर योगी सरकार ने मंगलवार को हुई कैबिनेट की बैठक में कड़ा कानून बनाने का फैसला किया है। अब यदि जहरीली शराब के सेवन से मौत हुई तो दोषियों को मृत्युदंड, आजीवन कारावास के साथ ही 10 लाख रुपये का जुर्माना भी चुकाना पड़ेगा। विषाक्त शराब बनाने से लेकर उसे बेचने वाले निर्धन तबके के सबसे बड़े दुश्मन हैं। कुछ वर्षों पहले राजधानी से सटे मलिहाबाद में हुई जहरीली शराब से दर्जनों मौतें हुई थीं। आजमगढ़ और कानपुर में भी ऐसे ही हादसे हुए। याद कीजिए, जहरीली शराब के सौदागरों और उन्हें संरक्षण देने वाले गुनहगारों के खिलाफ क्या हुआ? दरअसल विषाक्त शराब के कारोबारी हमेशा कानून की आंखों में धूल झोंककर पुराने धंधे में फिर जुट जाते हैं। पुलिस के वे अफसर भी बहाल हो जाते हैं जिनकी सरपरस्ती में विषाक्त शराब का चोखा धंधा फलता-फूलता है। जहरीली शराब इतनी खराब होती है कि सेवन करने वाला यदि मौत से बच भी गया तो उसे स्थायी अपंगता का दंश आजीवन भुगतना पड़ता है।

अंग्रेजों के बनाये 107 वर्ष प्राचीन उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 की दंडक धाराएं अभी तक चलन में थीं जिन्हें कैबिनेट ने लचर समझा। कड़े दंड के लिए अध्यादेश के माध्यम से अधिनियम की दो दर्जन ऐसी धाराओं में संशोधन प्रस्तावित हैं जिनमें सजा, दंड शुल्क और अधिकारियों के अधिकार का प्रावधान है। एक नई धारा भी प्रस्तावित है। चूंकि इन दिनों विधानमंडल सत्र नहीं चल रहा है इसलिए कैबिनेट की मंजूरी के बाद संबंधित प्रावधानों को अध्यादेश के माध्यम से लागू किया जाएगा। संशोधन संबंधी अध्यादेश को लागू करने के लिए उन्हें राज्यपाल के पास मंजूरी के लिए भेजा जाएगा। मंजूरी मिलते ही प्रावधान लागू हो जाएंगे। उम्मीद की जानी चाहिए कि दंड कठोर होने पर शराब की तस्करी व नकली शराब बनाने पर अंकुश लगेगा और आबकारी राजस्व में वृद्धि होगी। मौजूदा कानून में शराब की तस्करी से लेकर अवैध कच्ची देशी शराब बनाने वालों के खिलाफ न कड़ी सजा और न ही भारी-भरकम दंड शुल्क वसूलने की व्यवस्था थी। योगी सरकार का यह फैसला युगांतरकारी है।

याद कीजिए, जहरीली शराब के सौदागरों और उन्हें संरक्षण देने वाले अपराधियों के खिलाफ क्या कार्रवाई हुई?

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या आप सरकार के इस रुख से सहमत हैं कि रोहिंग्या शरणार्थियों से देश की सुरक्षा को खतरा है?

आज का सवाल

क्या राहुल गांधी के बयान से सहमत हैं कि संप्रग की तरह मोदी सरकार भी रोजगार देने में असफल रही है?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

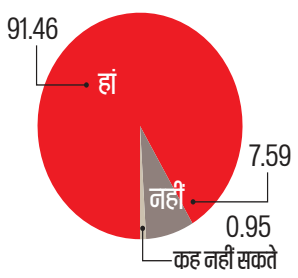

परिणाम एसएमएस से प्राप्त नतीजों के साथ जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

काल्पनिक खतरे का हौवा

प्रदीप सिंह

इस एक झूठ को विश्व स्तर पर प्रचारित किया जा रहा है कि लेफ्ट-लिबरल डेमोक्रेसी के अलावा दुनिया का कोई भविष्य नहीं है

पिछले करीब चार साल से देश में बौद्धिक, सामाजिक, अकादमिक और मीडिया के स्तर पर तनाव का सा माहौल है। ऐसा लगता है जैसे कोई निर्णायक युद्ध लड़ा जा रहा हो। ऐसा भी प्रतीत होता है कि युद्ध की घोषणा करने वालों का सब कुछ दांव पर लगा है। उनके लिए अस्तित्व का सवाल है। भारत की इस स्थिति को व्यापक वैश्विक संदर्भ में रखे बिना समझना कठिन है। साम्यवाद का किला ढहने के बाद अब लेफ्ट लिबरल्स के वर्चस्व को चुनौती मिल रही है। कई दशकों से दुनिया पर राज करने वाले इस समूह को खतरा नजर आ रहा है। पिछले चार साल में तीन ऐसी घटनाएं घटी हैं जो इस बात का साफ संकेत हैं कि दुनिया बदल रही है। पहली घटना थी 2014 के लोकसभा चुनाव में नरेंद्र मोदी की जीत। दूसरी, ब्रेक्जिट यानी ब्रिटेन का यूरोपीय संघ से निकलना थी और तीसरी थी, अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप का जीतना। ये तीनों घटनाओं ने एक ही बात का संदेश दिया कि आम लोग और खासतौर से वर्किंग क्लास चाहता है कि जिस वैश्वीकरण के लिए राष्ट्रवाद को खत्म किया गया उसकी वापसी हो। उपरोक्त तीनों घटनाओं के घटित होने से पहले के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय विमर्श को याद कीजिए। मोदी को जब भाजपा का प्रधानमंत्री पद का उम्मीदवार घोषित किया गया तो उनके खिलाफ न जाने क्या-क्या कहा गया? भविष्यवाणी की गई की उनकी जीत का तो सवाल ही नहीं उठता। मोदी तो सांप्रदायिक, अधिनायकवादी, प्रजातंत्र विरोधी एवं पूंजीपतियों के एजेंट हैं और भारतीय जनता ऐसे व्यक्ति को कभी प्रधानमंत्री नहीं बना सकती। यह भी कहा-लिखा गया कि मोदी प्रधानमंत्री बने तो देश में लोकतंत्र ही खत्म हो जाएगा। नतीजा क्या रहा? मोदी को ऐसा बहुमत मिला जो तीस साल में किसी को नहीं मिला था। ऐसे ही ब्रिटेन ने जब यूरोपीय संघ से निकलने के सवाल पर जनमत संग्रह कराने की घोषणा की तो तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कहा कि ऐसा हुआ तो ब्रिटेन बर्बाद हो जाएगा। बुद्धिजीवी, मीडिया और अर्थशास्त्री भयावह तस्वीर पेश कर रहे थे। सबने भविष्यवाणी कर दी कि ऐसा हो ही नहीं सकता और ब्रिटिश जनता ब्रेक्जिट के खिलाफ फैसला लेगी। नतीजा क्या हुआ, यह बताने की जरूरत नहीं।

अब तीसरी घटना पर गौर कीजिए: अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप ने उतरने की घोषणा की तो कहा गया कि ऐसे आदमी को तो पार्टी का नामांकन ही नहीं मिलेगा। जब वह मिल गया तो अमेरिका और दुनिया का अधिकांश मीडिया हिलेरी क्लिंटन के गुणगान और जीत की भविष्यवाणी करने लगा। ट्रंप के चरित्र हनन की हर संभव कोशिश की गई। 2006 के वीडियो निकाल कर दिखाए गए। ट्रंप ने अपने चुनाव अभियान में कहा कि इतने दशकों में अमेरिका के साथ दुष्कर्म हुआ है। सारे कारखाने बंद कर दिए गए। लोगों का रोजगार चला गया। देश की जनता यही सुनना चाहती थी। जब ट्रंप जीत गए तो कहा गया रिकाउंटिंग में हार जाएगा। चुनाव के दौरान अमेरिका का सिर्फ एक उद्योगपति ट्रंप के साथ था। बाकी के उद्योगपतियों में ज्यादातर विरोधी खेमे में थे। कुछ परोक्ष और कुछ प्रत्यक्ष तौर पर। 1989 में एक अमेरिकी पत्रिका में मशहूर राजनीतिशास्त्री फ्रांसिस फुकूयामा ने 'एंड ऑफ हिस्ट्री' यानी इतिहास का अंत शीर्षक से एक लेख लिखा था। इसके तीन साल बाद उन्होंने इसी विषय पर एक किताब लिखी, 'द एंड ऑफ हिस्ट्री ऐंड द लास्ट मैन।' लेख और किताब का निचोड़ यह था कि 1989 में सोवियत संघ के विघटन और साम्यवाद के बिखराव के बाद दुनिया में पूर्व और पश्चिम का वैचारिक संघर्ष खत्म हो गया है और पश्चिम की लिबरल डेमोक्रेसी जीत गई है। इसलिए इतिहास का अंत हो गया है। बहुत से टिप्पणीकारों ने इसे एंडिज्म भी कहा। चूंकि पश्चिम का जनतंत्र स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांत पर टिका है इसलिए माना गया कि किसी को ऐतराज नहीं होगा।

इसी परिकल्पना से वैश्वीकरण के सिद्धांत को बल मिला। वैश्वीकरण के लिए जरूरी था कि राष्ट्रवाद टूटे, क्योंकि वही इसके रास्ते की सबसे बड़ी बाधा था। पूंजीवाद मुक्त बाजार को पसंद करता है, लेकिन वास्तव में वह इसके बहाने समाज के प्रभु वर्ग के लिए बाजार में हेराफेरी करता है। वैश्वीकरण कहता है कि दुनिया में जहां कच्चा या सस्ता माल मिले वहां से लो। जहां मजदूर सस्ता मिले वहां विनिर्माण करो और जहां लोगों में खरीदने की शक्ति हो वहां बेचो। इस व्यवस्था में उस देश के लोगों के रोजगार के बारे में कोई विचार नहीं होता। उस देश की दूसरी आर्थिक गतिविधियों से भी कोई मतलब नहीं होता। साम्यवाद के खात्मे के बाद भारत और दुनिया के कम्युनिस्टों के लिए कोई आसरा नहीं रह गया। राष्ट्रवाद के वे पहले भी खिलाफ ही थे। सो कम्युनिस्ट यूरोप और अमेरिका की पूंजी से चलने वाले लोग एनजीओ में चले गए। वैश्वीकरण के दौर में राष्ट्रवाद के विरोध के बहाने लिबरल डेमोक्रेट्स को लेफ्ट का साथ मिल गया। दोनों ने मिलकर पूरी दुनिया के अर्थतंत्र, बौद्धिक जगत, अकादमिक जगत और मीडिया पर कब्जा कर लिया।

दरअसल वैश्वीकरण का पहला एजेंडा ही राष्ट्रवाद खत्म करना था। इस गठजोड़ ने एक झूठ को दुनिया में प्रचारित किया कि लेफ्ट-लिबरल डेमोक्रेसी के अलावा दुनिया का कोई भविष्य नहीं है। इतिहास खत्म हो चुका है, इस झूठ को प्रचारित करते-करते वे उस पर यकीन करने लगे। कुछ साल तक दुनिया में लोग वैश्वीकरण की चकाचौंध से चौंधियाए रहे, फिर धीरे-धीरे उन्हें एहसास होने लगा कि वैश्वीकरण ने उनकी आजीविका छीन ली, राष्ट्रीय पहचान खत्म हो रही और लोग बाजार एवं उपभोक्ता बनकर रह गए। जब तक लोग चुपचाप सहते रहे, लगता रहा सब कुछ ठीक है। फिर धीरे-धीरे लोगों की राष्ट्रवाद की आकांक्षा जगी और बदलाव का दौर शुरु हुआ।

वेतनभोगी और श्रमिक वर्ग उठ खड़ा हुआ। इस बदलाव से लेफ्ट लिबरल शक्तियां अभी तक हतप्रभ हैं। उनके सपनों का संसार खंड-खंड हो रहा है। हम दुनिया को चलाते हैं और हम ही दुनिया का एजेंडा तय करते हैं, यह घमंड चकनाचूर हो रहा है। यह बदलाव सार्वभौमिक है। इसमें जीतने वाले नेताओं के गुण-दोष का सवाल गौण है। लेफ्ट लिबरल अपने आखिरी पैर पर खड़े हैं। भारत में इस लड़ाई को दिग्भ्रमित करने के लिए पहले (मोदी की जीत के वक्त) बहुसंख्यकवाद के खतरे का हौवा खड़ा किया गया। फिर यह नया विमर्श आया कि धुर दक्षिणपंथ हावी हो रहा है, समाज और देश को बचना है तो इससे लड़ना होगा। मोदी और संघ परिवार इसके लिए आसान टारगेट हैं। यह लड़ाई मोदी या संघ परिवार की नहीं आम आदमी की राष्ट्रवाद की महत्वाकांक्षा की है। अफसोस कि आजादी की लड़ाई के समय से राष्ट्रवाद और मध्यमार्ग पर चलने वाली कांग्रेस पार्टी लेफ्ट लिबरल के साथ खड़ी है। वरना इस बदलाव की स्वाभाविक दावेदार वही बनती। इस सबके बावजूद जिन्हें जिम्मेदारी मिली है उन्हें यह समझना होगा कि आजीविका इस राष्ट्रवादी भावना के उभार का अविभाज्य अंग है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

अवधेश राजपूत

स्वास्थ्य सेवाएं सुधारने के उपाय

केसी त्यागी

आखिर इसकी क्या गारंटी कि निजी संस्थानों से संबद्धता के बाद सुविधाजनक उपचार मिलना शुरू हो जाएगा?

नीति आयोग द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यवस्था में एक अभूतपूर्व बदलाव की सिफारिश की गई है। उसने 'पीपीपी' यानी पब्लिक-प्राइवेट-पार्टनरशिप के तहत जिला स्तरीय सार्वजनिक अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों को निजी संस्थानों के साथ संबद्ध करने का प्रस्ताव दिया है। गैर-संचारी रोगों के इलाज के लिए निजी अस्पतालों की भूमिका बढ़ाने के उद्देश्य से एक मॉडल अनुबंध का प्रस्ताव नीति आयोग और केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा किया गया है। प्रस्तावित मॉडल के तहत जिला अस्पताल की इमारतों में निजी अस्पतालों को 30 वर्षों के लिए पट्टे पर जगह देने और अन्य व्यवस्था मुहैया कराने और देश के आठ बड़े महानगरों को छोड़कर अन्य शहरों में 50 से 100 बेड वाले अस्पताल बनाने के लिए जमीन प्रदान करने की बात कही गई है। निजी निवेशकों को आकर्षित करने के क्रम में आयोग द्वारा अस्पताल परिसर के 60,000 वर्ग फीट जमीन प्राइवेट संस्थानों को देने का प्रस्ताव भी किया गया है। शर्त है कि जिन जिला अस्पतालों में प्रतिदिन एक हजार से ज्यादा मरीज इलाज के लिए आते हैं, केवल उन्हीं अस्पतालों में निजी व्यवस्था स्थापित की जाएगी। इस प्रस्ताव को लेकर आयोग की दलील है कि नई नीति के लागू हो जाने से हृदय संबंधी, कैंसर और श्वास रोगों पर काफी हद तक काबू पाया जा सकेगा। सच है कि देश में गंभीर बीमारियों की वजह से होने वाली मौत में लगभग 35 फीसद भागीदारी इन्हीं तीन बीमारियों की है। आयोग की सिफारिश को रोग उन्मूलन की दृष्टि से देखे जाने पर स्पष्ट है कि सरकार लचर पड़ी चिकित्सा व्यवस्था को बल देना चाहती है। इससे इतर दूसरा और मजबूत पक्ष यह भी है कि क्या निजीकरण मात्र से आम जनमानस को अपेक्षित लाभ मिल पाएगा? सवाल यह भी है कि जब पूर्णतः सरकारी तंत्र की निगरानी में कैंसर, हृदय रोग और श्वास रोग आदि पर काबू नहीं पाया जा सका है तो क्या गारंटी है कि निजी संस्थानों से संबद्धता के बाद मरीजों को सुविधाजनक और सस्ता उपचार मिलना शुरू हो जाएगा?

यह पहली बार नहीं जब नीति आयोग की ओर से निजीकरण के संकेत मिले हैं। सर्वप्रथम 2015 में आयोग द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र में निजी निवेशकों और बीमा कंपनियों को मुख्य भूमिका में लाए जाने की कवायद शुरू हो गई थी। इसी दौरान सार्वजनिक चिकित्सा के खर्चों में कटौती करने और इस क्षेत्र में हो रहे निवेश पर काबू पाने और सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधा के तहत मरीजों को निःशुल्क मिल रही दवाइयों और अन्य सेवाओं को नियंत्रित करने की भी अनुशंसा की गई थी। हालांकि मंत्रालय द्वारा इस दिशा में अब तक बदलाव की घोषणा नहीं हुई है, लेकिन

निजीकरण की ओर बढ़ती प्रक्रिया से खासकर गरीब जनसंख्या में अविश्वास का संचार जरूर हुआ है। चिंता है कि निजीकरण का असर उनकी प्राथमिक चिकित्सा को प्रभावित न कर दे। निजीकरण की स्थिति में सबसे बड़ी चुनौती यह होगी कि सरकार पीपीपी मॉडल का संचालन किसके जिम्मे छोड़ेगी? निवेशकों की हिस्सेदारी की स्थिति में निश्चित रूप से उनका भी दबदबा होगा। नीति निर्माण से लेकर मरीजों से बर्ताव और प्राइवेट डॉक्टरों की मनमानी आमजनों की चिंता के मुख्य बिंदु हैं। वर्तमान व्यवस्था में सरकारी डॉक्टरों की अनुपलब्धता और इलाज के लिए मना किए जाने की बातें सामने आती रहती हैं। ऐसे में प्राइवेट संस्थानों द्वारा मरीजों के शोषण की भी आशंका बनती हैं। नई प्रस्तावित व्यवस्था में राहतपूर्ण यह है कि गंभीर मरीजों को सार्वजनिक अस्पताल परिसरों से परिचालित निजी अस्पतालों में त्वरित देख-भाल के लिए भेजा जा सकता है। इसके लिए चिकित्सा अधीक्षक की अनुमति का प्रावधान है। इस सबके बीच हम गोरखपुर के बीआरडी मेडिकल कॉलेज की घटना को नहीं भूल सकते। समय-समय पर इस तरह की घटनाएं सरकारी तंत्र की पोल खोलती रहती हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 प्रत्येक नागरिक को जीने का समान अधिकार और अनुच्छेद 41 राज्य द्वारा नागरिक को उपचार मुहैया कराने को निर्देशित करते हैं। अफसोस है कि सार्वजनिक चिकित्सा व्यवस्था अब तक इस मूल मंत्र से कोसों दूर है। भारत स्वास्थ्य क्षेत्र पर सबसे कम खर्च करने वाला राष्ट्र बना हुआ है। कुल जीडीपी का मात्र एक फीसद हिस्सा देश के सार्वजनिक स्वास्थ्य पर खर्च किया जाता है जो वैश्विक सूची में निम्नतम है। विकसित राष्ट्रों में यह आंकड़ा लगभग 10 गुना ज्यादा है। 12वीं पंचवर्षीय योजना यानी 2012 से 2017 के दौरान सरकारी खर्चे में कटौती की गई है। वर्ष 2014-15 के स्वास्थ्य बजट में 5100 करोड़ रुपये की कटौती हुई। इस बार सांकेतिक बढ़ोतरी जरूर हुई, लेकिन यह वर्तमान चुनौतियों से लड़ने में नाकाफी है। नए बजट में वर्ष 2017 तक काला ज्वर एवं फाइलेरिया, वर्ष 2018 तक कुष्ठ रोग, 2020 तक खसरा और 2025 तक टीबी से देश को मुक्ति दिलाने की घोषणा निश्चित रूप से उत्साहवर्धक है, लेकिन विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत को टीबी मुक्त होने में 2050 तक का समय लग सकता है।

वैश्विक आबादी में हमारा स्थान दूसरा है। इस लिहाज से सरकारों का दायित्व है कि वे नागरिकों को मूलभूत चिकित्सीय सुविधा प्रदान करें। ये सुविधाएं न मिल पाने की वजह से भारत कई बीमारियों का बड़ा गढ़ बन चुका है। ग्लोबल हंगर इंडेक्स में अपना देश श्रीलंका और बांग्लादेश से भी पीछे है। कुपोषण, भुखमरी, टीबी और मलेरिया जैसी बीमारियों के लिए तो भारत की नकारात्मक छवि स्थापित हो चुकी है। पिछले कुछ वर्षों में तमाम सुख-सुविधाओं से लैस हजारों की संख्या में बड़े आधुनिक अस्पताल खोले गए हैं, लेकिन महंगे इलाज के कारण इन अस्पतालों से भारतीय जनसंख्या के बड़े हिस्से को किसी प्रकार का लाभ नहीं मिल पाया है। एनएसएसओ की एक रिपोर्ट के अनुसार 80 प्रतिशत से अधिक आबादी के पास न तो कोई सरकारी स्वास्थ्य स्कीम है और न ही कोई निजी बीमा। ऐसे में जनसंख्या के बड़े समूह के लिए सरकारी स्वास्थ्य एक मात्र विकल्प बचता है जिसमें कई खामियां विद्यमान हैं। मानव संसाधन और तकनीकी सुविधाओं की कमी के कारण सरकारी अस्पताल काफी लंबे समय से आलोचना के केंद्र बने हुए हैं। यहां डॉक्टर, टेक्नीशियन, नर्सिंग स्टाफ, फार्मासिस्ट और विशेषज्ञों की संख्या में भारी कमी है। फलस्वरूप शुरुआती इलाज के अभाव में बीमारियां तेजी से पैर पसार रही हैं। इसे देखते हुए निजीकरण के बजाय वर्तमान व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण ज्यादा कारगर हो सकता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए अधिक बजट का प्रावधान, अनियमितता की निगरानी, आधारभूत संरचना का विकास और जेनरिक दवाइयों को बढ़ावा आदि बीमार पड़ी चिकित्सा व्यवस्था को पुनः दुरुस्त कर सकते हैं।

(लेखक जदयू के राष्ट्रीय प्रवक्ता हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आचार-विचार

सादा जीवन, उच्च विचार का अर्थ यही है कि मनुष्य के स्वभाव में सादगी हो, लेकिन विचार उच्च होने चाहिए। जो व्यक्ति अपनी धन-संपदा, वैभव व ज्ञान का दिखावा करता है, वास्तव में वह महाअज्ञानी होता है। धन या ज्ञान से समृद्ध होने के बाद तो व्यक्ति का स्वभाव फल लगे वृक्ष की तरह हो जाना चाहिए। जिस तरह वृक्ष पर जब फल लगते हैं तो वह नीचे की ओर झुक जाता है, उसी प्रकार ज्ञान व धन प्राप्त करने के बाद मनुष्य को भी विनम्र हो जाना चाहिए। अपने जीवन में सादगी को अपनाना और तुच्छ विचारों का त्याग करना मनुष्य का महान गुण है, जबकि स्वयं पर गर्व या अभिमान करना उसका सबसे बड़ा अवगुण है। हर व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने अहंकार व स्वार्थ को त्यागकर विनम्रता, त्याग और परोपकार जैसे गुणों को आत्मसात करे। किसी ने चाहे कितने ही शास्त्र क्यों न पढ़े हों, लेकिन जब तक वह उनके ज्ञान को अपने आचरण में नहीं उतारता है तो उसका शास्त्र पढ़ने का कोई फायदा नहीं है। मनुष्य का आचरण ही उसे महान बनाता है, क्योंकि अच्छे आचरण से उसमें उच्च विचार जन्म लेते हैं और ये विचार ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। हमारे मन-मस्तिष्क में जैसे विचार आएंगे, हमारे कर्म भी वैसे ही होंगे।

बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध का जन्म राजवंश में हुआ था, लेकिन अपने आचार-विचार से वह एक शासक नहीं, बल्कि संन्यासी थे। वह अपने परिवार सहित सारा राजपाट त्यागकर युवावस्था में ही बोध और मोक्ष की तलाश में घर से निकल गए थे। महात्मा बुद्ध का कहना था कि सभी गलत कार्य हमारे मन से ही उपजते हैं। अगर मन परिवर्तित हो जाए तो गलत कार्य भी नहीं होंगे। हमारा मन ही हमें यहां-वहां भटकाता रहता है और वह कभी सही को गलत तो कभी गलत को सही साबित करता है। इसलिए जो व्यक्ति अपने मन को साध लेता है, वह कभी गलत कार्य नहीं करता। मनुष्य में विनय, सहिष्णुता, साहस, चरित्र-बल आदि गुणों का विकास होना अति आवश्यक है, क्योंकि इनके बिना उसका जीवन सफल नहीं हो सकता। जिस तरह भूमि की उर्वरता का पता बोए गए बीज से लगता है, उसी प्रकार व्यक्ति के आचार-विचार से उसकी कुलीनता का पता चलता है। खुद को विनम्र रखना और अपने पैरों को जमीन पर टिकाए रखना ही मनुष्य की शक्ति का प्रतीक है

आचार्य अनिल वत्स

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

रोहिंग्या शरणार्थियों से परेशानी क्यों

इंसानियत पर दोहरा रवैया शीर्षक से लिखे अपने लेख में तसलीमा नसरीन ने बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना को रोहिंग्या मुसलमानों के प्रति हमदर्दी दिखाने पर नाहक ही आड़े हाथों लिया है। बेशक शेख हसीन अपने देश में हिंसक घटनाओं को रोकने में नाकाम रही हैं, लेकिन रोहिंग्या मुसलमानों को शरण देकर वह सच में इंसानियत दिखा रही हैं। इंसानियत का मतलब ही होता है बिना किसी भेदभाव के बेसहारा और सताए हुए लोगों की मदद करना। इस समय वह यही कर रही हैं। लेखिका को नहीं भूलना चाहिए कि वह ऐसा करने से मना भी कर सकती थीं। ऐसे में सुरक्षा चिंताओं का हवाला देखकर जो देश रोहिंग्या मुसलमानों को लेने से इन्कार कर रहे हैं उन्हें कुछ देर ठहरकर इनके दुख-दर्द को समझना चाहिए। रोहिंग्या लोगों को सुरक्षित स्थान पर बसाने और उन्हें मूलभूत सुविधाएं मुहैया कराने के लिए दुनिया के सभी देशों को निस्वार्थ भाव से एकजुट होना चाहिए, क्योंकि वे भी हमारे-आपके जैसे इंसान ही हैं।

raju09023693142@gmail.com

निजी स्कूलों की लूट

अंग्रेजी माध्यम के नाम पर देश में ढेरों स्कूल खुल गए हैं जहां पढ़ाई तो ठीक है परंतु उन्होंने शिक्षा के नाम पर आम लोगों को लूटना शुरू कर दिया है। नर्सरी हो या केजी अथवा प्राथमिक हो या मिडिल स्कूल हो या उच्च शिक्षा देने वाले कॉलेज जहां हजारों/लाखों रुपया डोनेशन और भारी फीस शिक्षा देने के नाम पर वसूली जा रही है। आम सामान्य परिवार के लिए अपने बच्चो को शिक्षा दिलाना आसमान से तारे तोड़ कर लाने जैसा हो गया है। सरकारी स्कूलों ने अपनी छवि बहुत गिरा ली है जहां सस्ती शिक्षा की उम्मीद रहती है। इसी तरह चिकित्सा के क्षेत्र में भी निजी अस्पतालों ने सेवा की बजाय मेवा बटोरना शुरू कर दिया है। सरकारी अस्पतालों की हालत भी खस्ता ही है इसीलिए प्राईवेट अस्पताल अपनी मनमानी कर रहे हैं। सरकार या तो अपने सरकारी स्कूलों/कॉलेजों व् अस्पतालों की छवि सुधारे या फिर प्राइवेट स्कूलों/कॉलेजों और अस्पतालों पर नकेल कसे ताकि आम लोग ना तो शिक्षा के नाम पर और ना ही इलाज के नाम पर लूटे जा सकें।

mahesh_nenava@yahoo.com

ऋणी समाज

कर्ज लेना कभी बुरा माना जाता था। कर्ज लेने वाले को लोग अच्छी नजर से नहीं देखते थे। मगर अब इंसान की हर जरूरत कर्ज पर आ रुकी है। क्योंकि कर्ज ने ही सही सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाई है। शिक्षा, घर, खेती-किसानी या व्यापार, हर कदम पर कर्ज हमारे साथ खड़ा है। जिंदगी की रफ्तार हो या बंद कमरे की ठंडी सुकून भरी जिंदगी, प्रगति के सपनों ने हमें ऋणी बना दिया है। विश्व मुद्रा बैंक का कर्ज हो या जापान का ब्याज शून्य कर्ज, आखिर है तो कर्ज। क्या ऋण सुलभ समाज का निर्माण ही सवा सौ करोड़ लोगों की आर्थिक आजादी और समानता का नायाब तरीका है?

mkmishra|5@yahoo.in

तेल महंगा कैसे?

नए पर्यटन मंत्री ने कहा कि पेट्रोल डीजल खरीदने वाले कोई भूखे लोग नहीं हैं। वे मोटरसाइकिल - कार चलाते हैं उन्हें पेट्रोल डीजल खरीदने में क्यों तकलीफ होनी चाहिए। क्या इस तरह की कोई भी अतार्किक बयानबाजी करके वो अपनी सरकार को आलोचना से बचा सकते हैं। उनके इस प्रकार के बयानों से सरकार की ही छवि खराब होती है। अब जबकि अंतराष्ट्रीय बाजार में तेल की कीमतों में लगातार गिरावट देखी जा रही है, तो हमारे देश में पेट्रोल डीजल की कीमतें क्यों बढ़ रही हैं?

धर्मेन्द्र सिंह, नई दिल्ली

भारत में बच्चों की मृत्यु

हिंदू समाज में प्रत्येक बालिका को देवी और बच्चे को राम का रूप माना जाता है। इसके बावजूद विडंबना यह है कि आज उसी भारत मां के बच्चे देवी या राम का रूप धारण करने की अवस्था तक पहुंचने से पूर्व ही काल का ग्रास बन जाते हैं। एक मेडिकल जर्नल के अनुसार वर्ष 2016 में पांच वर्ष से कम आयु के 9 लाख बच्चों की मृत्यु अकेले भारत में हुई है, जो दुनिया में सबसे अधिक है। उत्तर प्रदेश में गोरखपुर में बीआरडी अस्पताल में कई बच्चों की मौत की खबरें सुर्खियों में हैं। वहां हाल ही में 60 से अधिक बच्चों की एक सप्ताह के भीतर मौत हो गई। इनमें से ज्यादातर नवजात थे। वहीं, महाराष्ट्र के नासिक सिविल अस्पताल में पिछले महीने 55 शिशुओं की मौत हो गई थी। उत्तर प्रदेश के ही फर्रुखाबाद में जिला अस्पताल में पिछले एक महीने के दौरान ऑक्सीजन की कमी से 49 नवजात बच्चों की मौत का मामला सामने आया था। झारखंड के जमशेदपुर के एमजीएम अस्पताल में पिछले 30 दिनों में 64 बच्चों की मौत हो चुकी है। हमारा देश बाल मृत्यु दर के मूल्यांकन में सुधार करने में ज्यादा महत्व नहीं दे रहा है, यह शर्मनाक मामला है। बच्चों में ऐसी उच्च मृत्यु दर के कारणों की कोई बड़ी जांच नहीं हुई है। आंकड़े बताते हैं कि